"रस का स्वरूप"

भारतीय काव्यशास्त्र में रस विवेचन का आधार आचार्य भरतमुनि का 'नाट्यशास्त्र' है। इसमें आचार्य भरतमुनि ने रस के विभिन्न अवयवों का विवेचन करते हुए 'रससूत्र' दिया है। उनका रससूत्र इस प्रकार है — "विभावानुभावव्यभिचारिसंयोगाद्रस निष्पत्तिः।" अर्थात् विभाव, अनुभाव, व्यभिचारी भाव (संचारी भाव) के संयोग से रस की निष्पत्ति होती है। आचार्य भरतमुनि ने इस सूत्र के द्वारा रस का जो उदाहरण दिया है, उससे रस के स्वरूप पर उनके मत का पता चलता है। उनके अनुसार, "जिस प्रकार अनेक व्यंजनों और औषधियों के संयोग से रस की उत्पत्ति होती है, उसी प्रकार अनेक भावों के संयोग से रस की निष्पत्ति होती है। जैसे गुड़ादि द्रव्यों तथा औषधियों से षाड्वादि रस उत्पन्न होते हैं, वैसे ही अनेक भावों से उपगत होने से स्थायीभाव रसत्व को प्राप्त होता है।" आचार्य भरतमुनि ने रस को आस्वाद न मानकर आस्वाद्य माना है। जिस प्रकार विभिन्न प्रकार के व्यंजन अपना स्वाद और अस्तित्व छोड़कर भोज्य रूप में परिणत होते हैं, उसी प्रकार रस के विविध अवयव समन्वित रूप में रसत्व को प्राप्त करते हैं। ये विविध अवयव रस नहीं हैं अपितु वे संयुक्तावस्था में रस स्वरूप को प्राप्त होते हैं। आचार्य भरतमुनि का यह भी मानना है कि जिस जिस प्रकार स्वस्थ चित्त वाला व्यक्ति ही भोज्य पदार्थों का आस्वाद ले सकता है, उसी प्रकार

Scanned with CamScanner

सहृदय सामाजिक ही रस का आस्वादन कर सकता है। सहृदय रस का आस्वादन कर आनंद प्राप्त करता है। इस प्रकार आस्वादन प्रथम स्थिति अर्थात् कारण है, जबकि आनन्द द्वितीय स्थिति अर्थात् कार्य है।

आचार्य अभिनव गुप्त का रस विवेचन सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। आचार्य अभिनव गुप्त ने रस का स्वरूप विवेचन करते हुए उसमें अलौकिकता का समावेश किया है। आचार्य अभिनव गुप्त ने बताया है कि 'रति' आदि स्थायी भाव पाठकों के अन्तःकरण में वासना या संस्कार रूप में सदैव विद्यमान रहते हैं, जो विभाव आदि के संयोग से व्यंजनावृत्ति के अलौकिक व्यापार द्वारा 'रस' रूप में व्यक्त होते हैं। उनके अनुसार, "लोक व्यवहार में रति आदि भावों के कारण और कार्य नाट्य अथवा काव्य में विभाव, अनुभाव तथा व्यभिचारी भाव कहे जाते हैं। काव्य निबद्ध होने पर इनका लौकिक रूप नष्ट हो जाता है और ये अलौकिक रूप धारण कर लेते हैं। सामाजिक इन विभाव, अनुभाव एवं संचारी (व्यभिचारी) भावों का समवेत रूप में प्रत्यक्षीकरण करता है। यह प्रत्यक्षीकरण या चर्वणा ही रस है। यह आस्वाद रूप होता है, आस्वाद्य नहीं।" स्थायीभाव आस्वाद का विषय होने से रस न होकर उसकी प्राप्ति का साधन है। यह रस प्रत्यक्ष, अनुभव आदि से भिन्न अलौकिक होता है। रस चर्वणा काल

में सामाजिक का चित्त देश, काल, निज, पर आदि सीमाओं से मुक्त हो जाता है। वह पूर्णतः आत्म विश्रान्ति रूप होता है।" आचार्य अभिनव गुप्त रसानुभूति का आधार व्यंजना शक्ति को मानते हैं। उनका मानना है कि काव्य हमारी भावोत्तेजना का साधन मात्र है तथा वह नए भावों की सृष्टि नहीं करता है।

आचार्य मम्मट के अनुसार, "लोक में रत्यादि रूप स्थायी भावों के जो कारण, कार्य और सहकारी होते हैं, वे यदि काव्य या नाटक में प्रयुक्त होते हैं तो क्रमशः विभाव, अनुभाव और व्यभिचारी भाव कहलाते हैं तथा उन विभावादि से व्यक्त वह रत्यादि स्थायी भाव ही रस कहलाता है।" आचार्य मम्मट का रस के सन्दर्भ में दिया गया मत आचार्य अभिनव गुप्त के विचारों का ही पल्लवन है।

आचार्य विश्वनाथ का रस विवेचन के सम्बन्ध में मत है, "सहृदयों के हृदय में स्थित रत्यादि स्थायीभाव ही विभाव, अनुभाव और संचारी भावों द्वारा अभिव्यक्त होकर रस स्वरूप को प्राप्त होते हैं। अन्तःकरण में रजोगुण और तमोगुण को दबाकर सत्वगुण के सुन्दर, स्वच्छ प्रकाशित होने से रस का साक्षात्कार होता है। रस का स्वरूप अखण्ड, अद्वितीय, प्रकाशस्वरूप, आनन्दमय और चमत्कारमय है। रस चर्वणा के समय अन्य विषय का स्पर्श तक नहीं होता। अतः यह ब्रह्मानन्द के समान होता है।"

उपर्युक्त आचार्यों के मतों के विवेचन के आधार पर रस के स्वरूप की निम्नलिखित विशेषताएँ

Date ——
Page ——

निर्धारित की जा सकती है —

(i) रस की निष्पत्ति सामाजिक के हृदय में तभी होती है, जब उसके हृदय में रजोगुण और तमोगुण का तिरोभाव हो जाता है और सत्वगुण का उद्रेक होता है।

(ii) रस अखण्ड होता है। रसानुभूति के समय विभावादि अपना स्वतंत्र अस्तित्व त्याग कर स्थायी भाव में लय हो जाते हैं और सहृदय को उनकी अलग-अलग अनुभूति न होकर समन्वित अनुभूति होती है।

(iii) रस वेद्यान्तर सम्पर्क शून्य है अर्थात् रसास्वाद काल में सामाजिक पूर्णतः तन्मय रहता है। रसानुभूति की स्थिति में उसे अन्य वेद्य विषयों का ज्ञान ही नहीं रहता है। वह राग-द्वेष एवं देश-काल की सीमाओं से मुक्त होकर पूर्णतः आत्मलीन हो जाता है।

(iv) रस ब्रह्मानन्द सहोदर है। रसास्वादन काल में अन्य विषय सहृदय सामाजिक को स्पर्श नहीं कर पाते। इसलिए उसका आनन्द ब्रह्मानन्द (समाधि) के समान है। ब्रह्मानन्द लौकिक विषयों से असम्पृक्त तथा स्थायी होता है, जबकि रसास्वाद लौकिक विषयों से न तो पूर्णतः असम्पृक्त होता है और न स्थायी। इसलिए उसे ब्रह्मानन्द न मानकर ब्रह्मानन्द सहोदर माना जाता है।

(v) रस न सविकल्पक ज्ञान है, और न निर्विकल्पक ज्ञान। वह अलौकिक है।

(vi) रस न प्रत्यक्ष होता है और न परोक्ष होता है। रस का साक्षात्कार होता है। इसलिए उसे

Scanned with CamScanner

परोक्ष नहीं कहा जा सकता है। उसे प्रत्यक्ष भी नहीं कहा जा सकता, क्योंकि काव्य में शब्दादि से वह उत्पन्न होता है।

(vii) रस सुख-दुखात्मक न होकर आनन्दमय है। भाव सुखात्मक-दुखात्मक होते हैं, किन्तु जब वे रस रूप में परिणत हो जाते हैं तब आनन्द स्वरूप हो जाते हैं।

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर निष्कर्ष स्वरूप कहा जा सकता है कि रस काव्य की आत्मा है तथा यह काव्य का सर्वाधिक महत्वपूर्ण तत्व है। रस के अभाव में काव्य की कल्पना असम्भव है।

डॉ० राकेश कुमार
हिन्दी विभाग
शेरशाह महाविद्यालय, सासाराम, रोहतास

Scanned with CamScanner